पूज्य श्री सोगानीजी की १०९वीं जन्मजयंती प्रसंग पर कोटि कोटि वंदन!

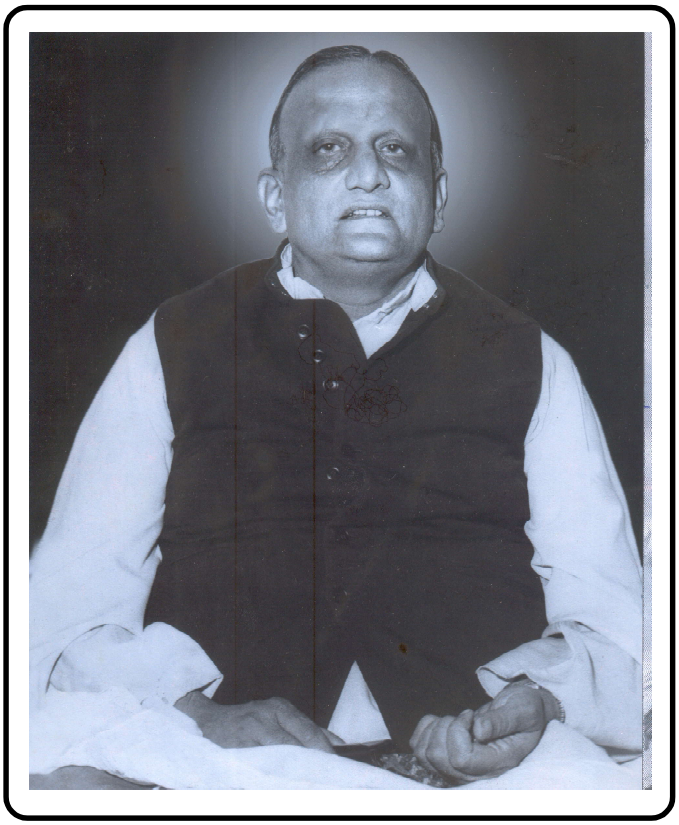

सोगानी का पुस्तक है.. द्रव्यदृष्टिप्रकाश. (उनमें) बहुत शक्ति थी। आत्मज्ञान हुआ था। यहीं, इसी गाँवमें..। पहले साधु-योगी का बहुत परिचय किया था। यम, नियम, ध्यान.. (सब किया था)। फिर यहाँ आये (तो हमने) इतना कहा, 'भैया! ये विकल्प उठता है न! राग, चाहे तो दया, दान का हो, ये सब राग से अन्दर प्रभु भिन्न है।' ऐसा कहा और ध्यान में चले गये। यहाँ रसोई है न रसोई, (समिति)। समिति में गये और शाम से सबेरे तक ध्यान में बैठे। अन्दर में घोलन करते-करते.. करते.. राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव यहाँ समिति में हुआ था। बाद में सारी जिन्दगी बहुत अच्छे संस्कार लेकर स्वर्ग में चले गये। आहा..हा..! बहुत शक्ति थी। द्रव्यदृष्टि प्रकाश है न, उसमें बहुत है। .. वहाँ से निकलकर बाद में दूसरे भव में केवलज्ञान पाकर मोक्ष हो जायेगा! .. वहाँ स्वर्ग में भी आत्मा में ठरते हैं। परन्तु थोड़ा राग है तो मनुष्यभव पाकर, केवलज्ञान पाकर, राग का नाश होकर मुक्ति होगी! (— पूज्य गुरुदेवश्री)

(श्री समयसार कलश-टीका) कलश-२१६ के प्रवचनमें से, प्रवचन क्रमांक-२४१)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६ः अंक-२६९, वर्ष-२४, मई-२०२०

आषाढ़ कृष्ण ४, बुधवार, दि. ६-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-७५ प्रवचन-२७

अब ७५, ७५ गाथा है न? **स्वयं ही जिन है...** स्वयं परमार्थस्वरूप है। **यह अनुभव मोक्ष का उपाय है।** देखो,

जो जिण सो हउँ सो जि हउ एहुउ भाउ णिभंतु।
मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु णमंतु।।७५।।

७५ गाथा! **जो जिनेन्द्र परमात्मा है वह मैं हूँ...** जो पूर्णानन्द वीतरागदशा प्राप्त हुई, जिन्हें आत्मा की शक्ति की पूर्ण विकास परमदशा प्राप्त हुई, वैसा परमात्मा वह मैं हूँ। क्योंकि मैं स्वयं ही परमात्मा होने योग्य हूँ। एक पीपर की चौसठ पहरी (चरपराहट) प्रगट हो गयी और एक काली पीपर चौसठ पहरी (चरपराहट की) ताकत रखती है। वह तो जड़ है इसलिए उसे पता नहीं है। इसी तरह एक को पूर्णदशा प्रगट हो गयी और यह पूर्ण दशा प्रगट होने की ताकत रखता है। मैं उसके समान हूँ।

जैसे वीतराग परमेश्वर, जिन्होंने आत्मा में से राग-द्वेष नष्ट किया, अल्पज्ञपना नष्ट किया, सर्वज्ञ और वीतरागदशा जिनकी प्रगट हुई; वैसा ही मैं आत्मा हूँ, उनकी जाति में और मेरी जाति में कोई अन्तर नहीं है। समझ में आया? नीचे गेहूँ की दृष्टान्त देंगे। **'जैसे हजार गेहूँ के दाने समान आकार और गुणोंवाले हों वे सब समान हैं तो भी सभी दाने अलग-अलग हैं।'** गेहूँ के हजार दाने हैं न? प्रत्येक दाने का आकार समान, आटा समान, भाव समान, तथापि वस्तु अलग है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा का भाव-स्वभाव समान तथापि वस्तु अलग है, वस्तु एक नहीं है। समझ में आया?

जो भगवान परमात्मादशा को प्राप्त हुए, उस दशा का धारक शक्तिवान वह मैं स्वयं ही जिनेन्द्र हूँ। आहाहा! **वह मैं हूँ...** और जरा सी दूसरी भाषा है। **वह ही मैं हूँ...** ऐसे दो हैं। वही मैं हूँ ऐसा, वही मैं हूँ जोर दिया है। वही मैं हूँ, ऐसा अधिक जोर दिया है। जिन्हें पूर्णदशा प्रगट हुई, आत्मा होकर अन्तरशक्ति की व्यक्तता की, जैसे तिल में से तेल निकालकर - जैसे घड़े में शुद्ध पड़ा है, वैसा ही तेल तिल में पड़ा है। इसी प्रकार जिन्होंने अन्दर परमशक्ति थी उसे अनुभवदृष्टि एकाकार होकर प्रगट की है, वैसा ही मैं हूँ, ऐसा अन्तर में दृष्टि से आत्मा का स्वीकार करना, वह सुख को प्राप्त करने का सरल, सीधा मार्ग है।

शशीभाई! यह हाथ आवे नहीं, सुनने मिले

नहीं और यह और वह करो, पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष चले गये कितने ही को तो सत्तर (पूरे हुए)। यह क्या है उसे सुनने नहीं मिलता। यह करो और यह छोड़ो और यह लो और यह दो, सेवा करो और करुणा करो, धूल करो और यह करो... कौन करता था? धूल! पर की सेवा कौन करे? शरीर में रोग आवे तो मिटा नहीं सकता। स्त्री को रोग आवे तो छुड़ाने का बहुत भाव है, डाक्टर बहुत होशियार हो, स्वयं को रोग होवे तो छूट नहीं सकता, वह तो जड़ की अवस्था है, तू जड़ को कर सकता है? प्रिय स्त्री मरती हो, स्वयं की चालीस वर्ष की उम्र (होवे) और उसकी पैतीस वर्ष की (होवे)। हाय... हाय...! अब क्या करना? दूसरी (पत्नी) होगी नहीं, यह जवान लड़के विवाह नहीं करने देंगे, जिवाने का बहुत भाव हो, मर जाती है। तेरा भाव वहाँ क्या कार्यगत होगा? उसकी दशा, उसके शरीर की जिस प्रकार से होनी है, उसे तू क्या कर सकेगा? समझ में आया? परन्तु इसको अभिमान (ऐसा कि) दूसरे का कर दें, ऐसा कर दें, वैसा कर दें। अभी तो बहुत होता है न? सुधार कर दें। धूल भी नहीं कर पाते, सुन न!

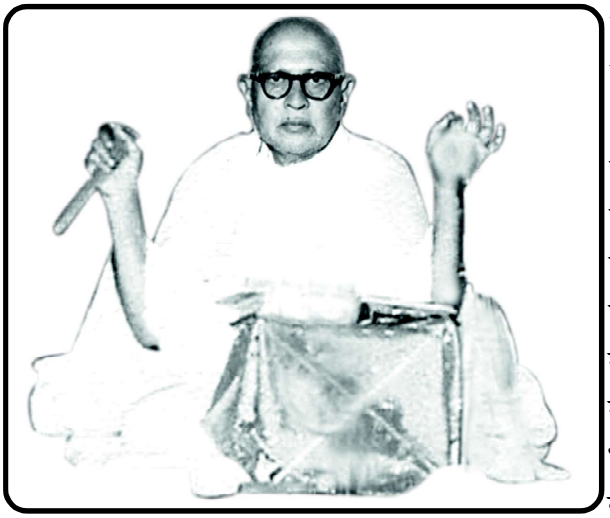

यहाँ तो कहते हैं कि जो वीतराग परमेश्वर पूर्णानन्द के नाथ, जिन्हें प्रगट दशा हुई वह मैं हूँ, वह मैं - ऐसा ही, उतना ही, उतना ही मैं वस्तुपने हूँ - ऐसा दृष्टि में स्वीकार आये बिना पूर्ण तत्त्व का सच्चा स्वीकार नहीं हो सकता। वही मैं हूँ... जोर (दिया) है। वही मैं हूँ। वही, वही हूँ। वही हूँ ऐसी शक्ति जिसे प्रगट हुई ऐसा मैं हूँ। समझ में आया? पीपर का प्रत्येक दाना समान है। शक्ति से, सत्त्व से, स्वभाव से पूर्ण अन्दर में समान है। इसी तरह प्रत्येक आत्मा शक्ति से, स्वभाव से समान है। दशा में अन्तर है तो दशा का अन्तर टालकर अन्तर के अवलम्बन द्वारा पूर्ण दशा प्रगट की, वही मैं हूँ - मैं ऐसा होने योग्य हूँ। इसका अर्थ ही है कि वह मैं हूँ। 'टोडरमल' ने कहा न? शक्ति से होने योग्य हूँ, परन्तु यहाँ तो कहते है कि मैं वह हूँ, वह हूँ, यहाँ अभी हूँ।

शुद्ध, शुद्ध परमानन्द की मूर्ति, जैसे बर्फ की शिला शीतल होती है, बर्फ की शीतल शिला हो उस बर्फ के किसी कोने खाँचरे, मध्य में कभी गर्मी नहीं होती। इसी तरह भगवान अविकारी चैतन्य का पिण्ड है, उसमें कहीं कषाय राग-द्वेष नहीं है - ऐसी वीतरागी शान्तरस की शिला आत्मा है। भगवान जाने स्वयं कैसा होगा? समझ में आया? शान्त... शान्त... शान्त... पुण्य-पाप के शुभ-अशुभ के विकल्प वह अशान्ति है, दुःख है। उसके मूल स्वरूप में वे नहीं हैं, शान्त... शान्ति की बर्फ की शिला जैसे पड़ी हो, वैसे ही भगवान देह से भिन्न अरूपी चिद्घन, अनन्त शान्ति के रस के कन्द से व्यापक प्रभु सम्पूर्ण भगवान आत्मा है। आहा...हा...! समझ में आया?

'एहुउ णिभंतु भाउ' ऐसी ही शङ्कारहित भावना करो। उसका अर्थ है। **'एहुउ णिभंतु भाउ'** ऐसी भावना निर्भ्रान्त कर, भ्रान्ति न कर। अरे...!

पूर्ण परमेश्वर जिनेश्वर हुए उनसे मैं अलग प्रकार का होऊँगा? जाति अलग, वस्तु तो वह की वह है तेरी दशा में तूने प्रगट नहीं की, उन्होंने प्रगट की है तो शक्ति से तो सभी तत्त्व (आत्मा) समान ही है। ऐसा मैं वह आत्मा परमेश्वर हूँ और परमेश्वर वही मैं हूँ। आहा...हा...! यह-वह किस दृष्टि के जोर से स्वीकार करे? यह ज्ञान... यह जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... जानना... यह जानना... जानना... जानने की शक्ति की बेहदता, अचिन्त्यता, अमापता, वह मैं। उस ज्ञान के साथ रहनेवाला आनन्द भी साथ है। वह अतीन्द्रिय आनन्द-बेहद आनन्द-पूर्ण आनन्द वह मैं हूँ। ऐसी वस्तु की दृष्टि का स्वीकार होने से उसकी पर्याय में अर्थात् दशा में सत्य का स्वीकार होने पर सत्य दशा प्रगट होती है, उसे धर्म कहा जाता है। आहा...हा...! अद्‌भुत व्याख्या भाई धर्म की! उसे अहिंसा कहा जाता है अर्थात् जो आत्मा का पूर्ण ज्ञान आनन्द आदि स्वभाव है ऐसा अस्वीकार और राग-द्वेष का जितना स्वीकार, उसका नाम अपने पूर्ण स्वभाव का अनादर वह उसकी हिंसा है। समझ में आया? अरे...! हिंसा, अहिंसा की यह फिर कैसी व्याख्या?

स्वयं चैतन्य पूर्णानन्द प्रभु, जिसकी पीपर में (शक्ति में) चौसठ पहरी चरपराहट और हरापन भरा है, इससे इंकार करे तो वह उसका खून करता है। अस्ति की नास्ति करता है। इसी तरह भगवान आत्मा पूर्ण शान्त, आनन्दकन्द ज्ञानानन्द पूर्ण ध्रुव है, उसका निषेध करे, उसकी नास्ति करे... नास्ति करे का अर्थ कि उसकी हिंसा करता है। पर की हिंसा कौन कर सकता था? धूल। वह तो उसकी दशा होने की हो तब होती है। पर की दया भी कौन पालन कर सकता था? भाव करे, भाव करे इसलिए वहाँ पर की दया पल जाती है? तब तो कोई मरेगा किस लिये? डाक्टर किसलिए मरने देगा? डाक्टर स्वयं किसलिए मरेगा?

शशीभाई! तुम्हारे वे डाक्टर थे या नहीं? वैद्य, सर... सर... सर... क्या कहलाते हैं वे? सर्जन। किसी का आपरेशन करते थे, यहाँ आये थे, तीन-चार बार आ गये हैं। सर्जन, 'भावनगर' किसी का (आपरेशन) करते थे, वहाँ (कहने लगे) 'मुझे कुछ होता है' उड़ गये! स्वयं गये। 'भावनगर' में अस्पताल में स्वयं मर गये। सुना है न? भाई! यहाँ आये थे, दो-चार बार आये थे। एक बार दाड़ के लिये आये थे, एक बार 'जिंथरी' में कुछ था तब आये थे। लो, स्वयं दूसरे का आपरेशन करने गये थे। (वहाँ कहने लगे) 'मुझे कुछ होता है' वहाँ समाप्त हो गये। वह तो देह की स्थिति कौन रखे? जो अवधि उस संयोग की है, उतनी वहाँ रहने की, इन्द्र-नरेन्द्र कोई फेरफार करने में समर्थ नहीं है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिसका संग ही किसी को नहीं ऐसे असंग तत्त्व की दृष्टि कर, उसमें सुखी होने की राह है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तू कर सकता है। समझ में आया?

हे योगी! क्या कहते हैं? **ऐसी ही शंकारहित भावना करो** '**एहुउ णिभंतु भाउ**' यह तो अकेले सिद्धान्त पढे. हैं न! बड़े सिद्धान्त हैं। जैसे 'चार पैसे में सेर तो मण का ढाई', - ऐसा सूत्र है। फिर सूत्र का खुलासा चाहे जितना करो, 'साढे. सात आने - साढे. आठ आने' इसी तरह यह तो अकेले सिद्धान्त, तत्त्व है। '**जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहउ भाउ णिभंतु**'। भ्रान्ति छोड़कर निर्भ्रान्तरूप से ऐसी भावना कर। आहाहा! यह उस भावना में कितना जोर है! उसकी पुरुषार्थ की उग्रता कितनी है! कोई कहे कि उसमें क्या? परन्तु उसमें पुरुषार्थ की उग्रता है। अल्पज्ञ और

राग-द्वेष होने पर भी मैं पूर्णानन्द हूँ, अखण्ड अभेद हूँ - ऐसी दृष्टि में पुरुषार्थ में ऐसा स्वीकार (आया) उस पुरुषार्थ की उग्रता कितनी! उस श्रद्धा में जोर कितना और उसके ज्ञान में जोर कितना कि मैं ऐसा परिपूर्ण हूँ!! उस श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति तीनों में जोर है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जोर करने का उपाय क्या?

उत्तर : वह क्या कहलाता है? उसमें - अन्दर में जोर करना, वह जोर लाने का उपाय अंगुली डालना है वहाँ? वह जोर, ऐसा हूँ, वह जोर कौन लावे? मैं अल्पज्ञ हूँ, रागी हूँ, ऐसा हूँ ऐसी जो मान्यता, उस मान्यता में यह मैं परिपूर्ण हूँ इस मान्यता का जोर कौन लावे? करनेवाला लावे, दूसरा कौन लावे? कहो, समझ में आया? आहाहा! दुनिया में भी कहते हैं जननेवाली में जोर न हो तो सुयाणी (प्रसुती करानेवाला) क्या करे? सुयाणी। वैसे ही इसमें परिपूर्ण को प्रतीत करने का जोर न हो तो कौन करा दे? कहो, समझ में आया? इसे अनन्त काल गया, चौरासी के अवतार में इसके छिलके उड़ गये, आदि रहित काल। आदि है? अनादि का आत्मा है। नया होता है? (तो) कहाँ रहा? कहाँ रहा? होवे वह जाता नहीं और नहीं हो वह होता नहीं। होवे, वह जाता है? होवे उसका रूपान्तर होता है। रूपान्तर होता है; रहकर रूपान्तर होता है परन्तु जाकर अभाव होता है, ऐसा कभी नहीं हो सकता और न हो वह नयी चीज होती है (ऐसा नहीं होता)। गधे के सींग जगत् में नहीं हैं। कभी हुए ऐसा होगा नहीं। भगवान आत्मा अनादि का है। समझ में आया? इसमें आनन्दादि गुण की शक्ति अनादि की पड़ी है। प्रतीति में नहीं है, भरोसा नहीं आता। अरे! मैं ऐसा? कहते हैं कि निर्भ्रान्त होकर भावना कर। भ्रान्ति छोड़ दे। आहाहा!

अरे...! मैं परिपूर्ण प्रभु हूँ न! मेरे स्वभाव में तो परिपूर्णता (भरी है)। जिसे वस्तु कहते हैं और वस्तु का बसा हुआ अन्दर स्वभाव यदि कहें, वस्तु है न? पदार्थ है न? उसमें बसी हुई शक्तियाँ हैं। वस्तु अर्थात् उसमें बसी हुई शक्तियाँ, तो भगवान आत्मा वस्तु में बसी हुई रही हुई शक्तियाँ अर्थात् ज्ञान आनन्द गुणों के शक्ति के स्वभाव में अपरिमितता होती है, उसमें मितता-मर्यादा कैसे होगी? ऐसा जिसका अपरिमित ज्ञान आनन्दादि पूर्ण स्वभाव है, वही मैं हूँ, मैं भगवान हूँ।

जिन वह जिनवर और जिनवर वह जिन! जिनवर कोई सम्प्रदाय का शब्द नहीं है, गुणवाचक है। राग और विकार का अभाव होकर उसके स्थान में अन्तर में जो वीतरागता, निर्दोषता पड़ी है, उसे प्रगट करके अरागी दशा की परिपूर्णता होना उसे आत्मा की वीतरागदशा कहते हैं। वह आत्मा का गुणवाचक नाम है, सम्प्रदायवाचक नहीं। समझ में आया?

हे योगी! सम्बोधन किया है, हाँ! तू कुछ करना तो चाहता है या नहीं? कहते हैं। ऐसा जोड़ना (होता) है न? राग-द्वेष, पुण्य-विकल्प यह... यह... यह... यह... उसमें तो तेरा जुड़ान है, वह भी एक अज्ञान का योग है। पर के प्रति योग-सम्बन्ध किया है। ऐसा कर न अब! सुखी होना हो तो ऐसा जुड़ान कर न! भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु विराजता है, उसमें जुड़ान (कर)। योग... योग अर्थात् यूज - जुड़ना। जुड़ना श्रद्धा-ज्ञान से स्वीकार लाना, वह आत्मा के स्वभाव में जुड़ान को योग कहते हैं। उस योग को योगी कहते हैं। इस योग का सार-धर्म कहा जाता है। अन्य 'योगी' ऐसे-वैसे बैठ जायें ऐसे योगी नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा के पूर्ण स्वभाव में जिसने अपनी दृष्टि और ज्ञान की वर्तमान कला उसमें जोड़ी, उसे योगी कहते हैं; उस योगी का वह

व्यापार उसे योग कहते हैं, उस योग को धर्म कहते हैं। यह किस प्रकार की बात! शशीभाई! यह कहाँ की (बात) होगी? लॉजिक से-न्याय से बैठे ऐसी बात है परन्तु कभी पृष्ठ खोला नहीं न? कभी पृष्ठ देखा नहीं न? कि कहाँ है मेरा माल? मेरा पिता किसमें रख गया है? समझ में आया? अनन्त काल में ऐसे के ऐसे आत्मा के भान बिना भटका है। साधु हुआ, त्यागी हुआ, सूख कर मर गया परन्तु अपनी जाति की परिपूर्णता की दृष्टि के स्वीकार बिना जन्म-मरण का अन्त किसी दिन नहीं आता। (भले ही) मर जाये नहीं। बाबा होकर, योगी होकर। स्त्री-पुत्र कहाँ अन्दर में आ गये थे, वे तो बेचारे बाहर खड़े हैं। वह मैंने छोड़ा, उसका इसे अभिमान है। भगवान आत्मा एक समय में, सेकेण्ड के छोटे से छोटे काल में परिपूर्ण प्रभु है, ऐसा दृष्टि में स्वीकार न आवे तब तक परिपूर्ण की सत्यता का स्वीकार नहीं तब तक असत्य का स्वीकार है, वह मिथ्यादृष्टि है। असत्य कहो या मिथ्या कहो, सत्य कहो या सम्यक् कहो। समझ में आया? आहाहा...!

मोक्ष का उपाय यही है और कोई मन्त्र या कोई तन्त्र नहीं। कोई मन्त्र जपने से होता होगा? ओम... ओम... ओम... ओम... ओम... अब ओम... ओम... लाख बार कर, करोड़ बार कर, वह भी विकल्प है। ऐ... शशीभाई! वह तो राग है, वह कहाँ आत्मा का धर्म था? तन्त्र, मन्त्र होगा या नहीं? मन्त्र-तन्त्र का डोरा बाँध दे और अमुक हो जाये; डोरा बाँध दे, जा तेरा मोक्ष हो जायेगा! ऐसा कुछ होगा या नहीं? धूल में भी कहीं नहीं है, सुन न! फूलचन्दभाई! '**जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहउ भाउ णिभंतु मोक्खहँ कारण जोइया**' पूर्णानन्द की दशारूपी मोक्ष... मोक्ष का यह अर्थ है। पूर्णानन्द की प्राप्ति उसका नाम मोक्ष। ऐसे मोक्ष के कारणरूप, हे योगी! '**अण्णु ण तंतु ण मंतु**' भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी अन्तरदृष्टि और ज्ञान में स्वीकार करके एकाकार होना, वही आत्मा को पूर्ण शुद्धतारूपी आनन्द और पूर्ण आनन्द की दशा की प्रगटतारूपी मोक्ष है। उसका कारण यह एक ही है दूसरा कोई विकल्प और दया, दान, भक्ति, पूजा-फूजा, जात्रा-फात्रा, वह कोई मोक्ष का कारण नहीं है। कहो, समझ में आता है? है?

मुमुक्षु : यह नहीं सूझता उसका कारण क्या?

उत्तर : सूझता है, नहीं सूझता ऐसा कैसे? स्थिर नहीं हो सके तो वहाँ तक उसे शुभभाव होते हैं। दया, दान, भक्ति, पूजा का भाव होता है परन्तु वह भाव होता है वह अन्दर की स्थिरता का कारण नहीं है और अन्दर की शान्ति का कारण नहीं है। समझ में आया?

मोक्ष का उपाय यही है कि अपने आत्मा को निश्चयनय से जैसा है वैसा समझे। लो, जैसा भगवान त्रिकाली है, वैसा उसके ज्ञान में ले, श्रद्धा में ले, अन्दर स्थिरता करे, वही आत्मा को पूर्ण शुद्धिरूपी मोक्षदशा उसका यह एक ही उपाय है। **जैसा है वैसा...** जैसा पूर्ण है ऐसा। वस्तु ज्ञान से, आनन्द से, शान्ति से, स्वच्छता से, प्रभुता से, परमेश्वरता से, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान - ये सभी शक्तियाँ अन्दर आत्मा में पूर्ण पड़ी है। शुद्धरूप से परिपूर्ण प्रभु में पड़ी है। समझ में आया? ऐसे स्वभाव को जैसा है वैसा समझे।

मूल स्वभाव से यह आत्मा स्वयं जिनेन्द्र परमात्मा है। कर्मरहित आत्मा को जिनेन्द्र कहते हैं। अपना आत्मा निश्चय से द्रव्यकर्म... जड़कर्म, पुण्य-पाप के **भावकर्म और नोकर्म...** शरीरवाणी से **रहित है। व्यवहारनय से अथवा पर्यायदृष्टि से....** अशुद्ध दिखता है। **शुद्ध होने**

की शक्ति रखता है। तथापि अवस्था-वर्तमान हालत से देखें तो विकार दिखता है। वस्तु से देखें तो परमात्मा होने की शक्ति कायम रखता है। कारण समयसार कहा।

आत्मा और परमात्मा समान है। आत्मा और परमात्मा सब प्रकार से समान है। भगवान पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई और यह आत्मा समान है, केवल सत्ता की अपेक्षा से भिन्नता है। उनकी सत्ता-होनापना भिन्न है, इसका सत्तापना भिन्न है। **द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव जो एक आत्मा के हैं, वे ही दूसरे आत्मा के हैं।** भगवान आत्मा जैसी अपनी वस्तु, अपनी चौड़ाई, अपनी दशा और अपने भाव उस रूप स्वयं है; उसी प्रकार सभी आत्माएँ हैं। **सर्व आत्माओं का चतुष्टय समान है, सदृश्य है परन्तु एक नहीं - एक समान है।** सब एक नहीं, एक समान है। आहा...हा...! (गेहूँ के) दाने का दृष्टान्त दिया था न?

(अपनी आत्मा को) **परमात्मारूप देखना और अनुभव करना वही वीतरागभाव की प्राप्ति का उपाय है।** निश्चय से अपने आत्मा को पूर्णस्वरूप से देखना, श्रद्धा करना और स्थिरता वही अनुभव करना, वही पूर्णानन्द की प्राप्ति का उपाय है। जितने प्रमाण में अन्तर में राग रहित श्रद्धाज्ञान और शान्ति प्रगट होती है उतने प्रमाण में धर्म है। इसके अतिरिक्त जितने रागादिक रहें, उतना अधर्म है। पूर्ण... पूर्ण प्रभु उसकी एकाग्रता होकर जितनी रागरहित दशा प्रगट होती है उतना धर्म; विकल्प बाकी रहे उतना धर्म से विरुद्धभाव है, समझ में आया?

वास्तव में जो कोई अरहन्त व सिद्ध परमात्मा को ठीक-ठीक पहचानता है... यह प्रवचनसार का दृष्टान्त देते हैं। वास्तव में कोई अरहन्त सिद्ध परमात्मा जो हुए उन्हें जो उनके द्रव्य-गुण को, द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण अर्थात् उसकी शक्ति अवस्था अर्थात् प्रगट दशा। वस्तु, वस्तु की शक्तियाँ अर्थात् गुण-स्वभाव और उसकी वर्तमान हालत प्रगट दशा; उस पूर्णानन्द परमात्मा को इन तीन से जो जानता है, ऐसा मैं आत्मा हूँ, ऐसा उसे जानने का प्रयत्न होता है, तब उसे सम्यक्-सत्यदर्शन, आत्मा प्रगट होता है। समझ में आया? **यही कर्म खास करने योग्य माना है।** देखा, अब कार्य लिया। **यही स्वानुभव की कला है।** यही स्वानुभव की कला है। आत्मा में एकाकार दृष्टि करना, शुद्धस्वरूप का अनुभव करना, **यही कला, यही तन्त्र है, यही मन्त्र है और कोई मन्त्र-तन्त्र नहीं है। जिससे आत्मा मुक्ति प्राप्त कर सके।**

यहाँ एकान्त में कितने ही आते हैं, महाराज! ऐसा कोई मन्त्र दो कि जिससे मोक्ष होवे। ऐसा कोई मन्त्र-फन्त्र नहीं है, सुन! महाराज कुछ जाप करते होंगे (इसलिए मैं भी करूँ)। जाप-वाप नहीं, इस भगवान को पहचानना वह जाप है; उसकी कीमत आने पर उसे राग-द्वेष और पैसा और पर के इन्द्रिय-विषय के सुख के भोग की कीमत उड़ जाती है। अतीन्द्रिय आनन्द के सुख की कीमत दृष्टि में आने पर इन्द्रिय के विषय के सुख और उसके कारण पुण्य और उसके फल बाह्य (संयोग), सबकी कीमत एकदम उड़ जाती है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी अन्तर में कीमत की कीमत करने पर, कीमती की कीमत करने पर, ऐसी कीमती चीज की कीमत दृष्टि में करने पर उसे इन्द्रिय-विषय में सुखबुद्धि छूट जाती है। मुझमें आनन्द है, इन्द्रिय के विषय में धूल है (ऐसी) सुखबुद्धि उड़ जाती है। समझ में आया? और इन्द्रिय-विषय के कारणरूप

पुण्यभाव हो, उसमें भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। उस पुण्य से बन्धन होता है, उस पुण्य से भी सुखबुद्धि उड़ जाती है। आहा...हा...! उसकी विधि इसे पकड़ में नहीं आती। पहले तो सुनने ही नहीं मिलती तो बेचारा कहाँ जाये? जिस पन्थ में चला, ऐसा का ऐसा चला जाता है। जिन्दगी पूरी होकर मरकर जाये, जहाँ से आया हो, वहाँ का वहाँ (जाता है), चौरासी की घानी में (जाता है)। चौरासी की बड़ी खाई पड़ी है। आहा... हा...!

वह मर गया, नहीं? नवनीतभाई का लड़का। 'काश्मीर' (गया था) नवनीतभाई गृहस्थ मनुष्य, साठ-सत्तर लाख, करोड़पति होंगे। ढाई करोड़ के तो उन्हें कारखाना है। उनके दो पुत्र हैं, उसमें एक लड़का घोड़े पर बैठकर ऐसा कहीं जा रहा था, उसमें रास्ता छोटा होगा, उसमें घोड़ा भागा, लड़का उस पर बैठा था, वह भी लपटा। नीचे खाई... ऐसी खाई... हो गया... छोड़कर चला गया...। लड़का और घोड़ा दोनों नीचे (गये)। खाई वह ऐसी खाई कि किसी भी व्यक्ति को जाने का कोई रास्ता न मिलें, कोई जा ही नहीं सकता। हो गया... ऐसे गिरते... गिरते... गया हो गया समाप्त! चलो छोड़कर! वह घोड़ा और लड़का दोनों नीचे गये। यह नवनीतभाई अपने प्रमुख हैं न! यहाँ मकान बनाते हैं न? समझ में आया? यह चौरासी की खाई है, कहते हैं। यदि यहाँ से लटका... आहा...हा...! वह अवसर कैसा होगा? गृहस्थ व्यक्ति, उसका लड़का घोड़े पर बैठकर जाये- ऐसा जरा-सा पैर लटका। चारों ओर खाई... खाई... खाई... गहरी खाई बबूल (की झाड़ी) के अन्दर कैसे बाघ, भालू होगा? कितना गहरा होगा? कहाँ जाकर फँस गया होगा? और वहाँ जाकर देह छूट गया होगा, हो गया जाओ! घोड़ा और मनुष्य। वह खाई है, बापू! ऐसे ही इस मनुष्य देह में आत्मा को पहचानने का काल अवसर है। अन्यत्र यह अवसर नहीं है। यदि यह अवसर चला गया तो खाई में जायेगा, चौरासी में पता लगे ऐसा नहीं। उपाय एक ही है। समझ में आया?

अनेकान्त के ज्ञान से विभूषित रहे की पर्याय की अपेक्षा से मैं कर्मसहित हूँ। अवस्था से कर्म सहित हूँ। अशुद्धता है (वह) मेरे त्रिकाल में है नहीं, ऐसी दृष्टि रखकर अपने आत्मा में एकाकार होता है। कहो, समझ में आया? यह पचहत्तर गाथा हुई। अरिहन्त का दृष्टान्त दिया है। **जो कोई अरहन्त भगवान को द्रव्य-गुण-पर्याय द्वारा यथार्थ जानता है...** परमेश्वर जो अरि अर्थात् राग, द्वेष, अज्ञान, शत्रु, उन्हें जिसने नष्ट किया ऐसे परमात्मा अरहन्त, ऐसे अरहन्त के द्रव्य अर्थात् वस्तु, गुण और पर्याय - अवस्था ऐसी निर्मल, उनके गुण परिपूर्ण निर्मल, उनका धारक द्रव्य निर्मल, इस प्रकार जो परमात्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है, वह आत्मा को जानता है। और उसे सम्यक् (प्रकार से) मोह का नाश हुए बिना नहीं रहता। सम्यक् प्रकार से मोह का नाश होकर, सम्यक् अनुभव हुए बिना नहीं रहता। यह प्रतीति का जोर लाना कहाँ से? करना कहाँ से? भस्म-वस्म खाने से प्रगट होता है या नहीं? लो, यह भस्म ऐसा कहते हैं न! तांबे की भस्म, धूल की भस्म। धूल भी नहीं, सुन न! यह तो अन्दर के बल की कला की बात है। जो कला अन्दर से जागे, तब स्वयं माने ऐसा है। इसलिए अरहन्त का दृष्टान्त दिया है। ७६ वीं गाथा में गुण की संख्या की बात करेंगे। दो, तीन और चार दृष्टान्त देंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार ग्रंथके वचनामृत-१५१ पर भाववाही प्रवचन, दि.१६-१-१९८३, प्रवचन क्रमांक-५५ (विषय : मार्गदर्शन)

शंका :— तो फिर हम शास्त्र पढ़े या नहीं?

समाधान :— आत्मलक्ष्य से शास्त्र पढ़ना-ऐसा प्रवचनसार में कहा है, क्योंकि शास्त्रों का कहना ऐसा है कि भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत आनन्द की मूर्ति है—उसका ज्ञान करना, अनुभव करना। करणानुयोग या चरणानुयोग के पढ़ने से लाभ क्या?—कि उन चारों अनुयोगों के पढ़ने का गुण तो आत्म-अनुभव प्राप्त करना है—यही शास्त्र पढ़ने का लाभ है अर्थात् 'आत्म-अनुभव करना ही शास्त्राभ्यास का तात्पर्य है।' १५१

'**जैसे हम दर्पणमें घट-पट देखते हैं, यहाँ जो देखना है, वह उपचारसे देखना (दर्शन) नहीं।**' देखना सो उपचार दर्शन नहीं है, वास्तविकता है। '**ज्ञेय प्रत्यक्ष देखते हैं, वे तो असत्य नहीं हैं। परन्तु विशेषता यह है कि उपयोगरूप ज्ञान में स्वपरप्रकाशक शक्ति है,...**' जो ज्ञान का उपयोग है, उपयोग ज्ञान में स्वपरप्रकाशकशक्ति है। '**उसमें अपने स्वरूपप्रकाशन में निश्चल व्याप्य-व्यापकतासे लीन हुआ अखण्ड प्रकाश है,...**' क्या कहते हैं? अपने स्वरूपप्रकाशन में ज्ञान अपने स्वरूप का प्रकाशन कर रहा है उसमें सदा है, ज्ञान ज्ञानपने सदा प्रकाशमान है, इसलिये उसे निश्चल स्वरूपप्रकाशन कहने में आता है। क्योंकि स्वरूपप्रकाशन से ज्ञान कभी चलित नहीं होता। ऐसे '**निश्चल व्याप्य-व्यापकतासे लीन हुआ अखण्ड प्रकाश है,...**' ज्ञान ज्ञान में व्याप्य-व्यापकपने रहा अखण्ड प्रकाश है, जिसमें खण्ड नहीं होता।

'**परका प्रकाशन तो है, परन्तु व्याप्य-व्यापकरूप एकता नहीं है,...**' पर में ज्ञान में प्रतिबिंबित होता है तो भी पर, ज्ञान में व्यापता नहीं, ज्ञान पर में व्यापता नहीं ऐसा कहते हैं। अर्थात् पर को जानने पर ज्ञान पर के साथ एकमेक होता नहीं। इसलिये ज्ञान पर को जानता है, यह '**उपचार संज्ञा हुई...**' उपचार संज्ञा क्यों हुई? कि एक पदार्थ का निरपेक्ष कथन करना चाहिये, उसके बदले पर-सापेक्ष कथन करने में आया। ज्ञान जानता है उसमें पर को जानता है, ऐसा पर-सापेक्ष उसका कथन हुआ, इसलिये उसको उपचार संज्ञा हुई, '**वस्तुशक्ति उपचार नहीं है...**' क्या स्पष्टता है? पर को जानता है ऐसा कहना वह उपचरित कथन है, परन्तु ऐसी जो पर को जानने की शक्ति है वह उपचरित नहीं है, वह उपचार नहीं है, वह तो निश्चय शक्ति है। '**इसीका विशेष वर्णन लिखते हैं :—** ' अपने तो इतना ही मुद्दा था, वह तो स्वपरप्रकाशक का विषय है, फिर उसकी ही चर्चा की है। बहुत स्पष्टीकरण किया है। परन्तु इस प्रकार निर्विकल्प है ऐसा कहना है। वैसे तो

सर्व गुण गुणपने से निर्विकल्प है। आत्मा के सर्व गुण गुणपने निर्विकल्प हैं, परन्तु ज्ञान तो यहाँ स्वपरप्रकाशक कहकर निर्विकल्प कहा है कि वह निर्विकल्प ज्ञान का स्वरूप है। अतः ज्ञान को स्वरूप से देखना हो, ज्ञान को स्वभाव से देखना हो तो उसको उसके निर्विकल्प स्वरूप से और निर्विकल्प स्वभाव से देखना चाहिये। तो ज्ञान का स्वरूप कैसा है यह ज्ञात होता है। अपने तो यहाँ यह मुद्दा चलता है न।

मुमुक्षु :— ..

उत्तर :— हाँ, मूल विषय की चर्चा की थी। स्व के ज्ञान में पर का अभावरूप ज्ञान, इस प्रकार पर का ज्ञान निर्विकल्पपने आ जाता है। स्वपरप्रकाशक निर्विकल्प कैसे कहना? यहाँ तो ऐसा दिखता है कि जीव पर का विकल्प करता है और पर का ज्ञान होता है। हमारा अनुभव ऐसा कहता है कि जीव पर का विकल्प करता है और पर का ज्ञान होता है। कहते हैं कि, वह पर का ज्ञान तुझे प्रयोजनभूतपने नहीं हो रहा है।

यदि चोर को चोर रूपसे न पहिचाने तो उस व्यक्ति को जानने का प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। तो वह व्यक्ति चोरी करेगा तब तक तुझे मालूम नहीं पड़ेगा। भले उसका रूप-रंग सब तुझे मालूम हो, परन्तु घर में घुस गये आदमी का चेहरा न दिखे और मात्र उसके पैर का अँगूठा दिखे तो भी चोर है उसका प्रयोजनभूत ज्ञान हो गया। जहाँ तक प्रयोजन का सवाल है, वहाँ तक क्या है कि प्रयोजन के दृष्टिकोण से उसका ज्ञान हो उतना पर्याप्त है। और वह ज्ञान उसके निर्विकल्प स्वरूप में भी प्रयोजनभूतपने नवों तत्त्वों का ज्ञान भूतार्थ आश्रित इस तरह हो जाता है। नवों तत्त्वों का ज्ञान भूतार्थ आश्रित होना उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है। १३वीं गाथा है समयसार की।

मुमुक्षु :— ...

उत्तर :— राग का और विकल्प का मूल भगवानने अज्ञान कहा है। आगे प्रश्न किया है, यह बन्ध अधिकार का ही विषय है कि इस आत्मा के अन्दर कोई राग की इच्छा और विकल्प की खान पड़ी है कि अन्दर से उत्पन्न होते ही रहता है? है क्या? यह कहाँ, कौन-सी खान है कि जिसमें-से निरन्तर राग आता ही रहता है? तो कहते हैं कि, अज्ञान उसकी खान है, और कोई नहीं। स्वयं का ही राग रहित निर्विकल्प स्वरूप है, उस स्वरूप के अज्ञान के कारण राग होता ही रहता है। कोई जीव को स्वरूप का अज्ञान न टले तब तक राग बंद होने का कोई प्रकार नहीं है, कोई उपाय नहीं है, उसका कोई अंत आये ऐसा नहीं है। खत्म हो ऐसा नहीं है, अंत आये ऐसा नहीं है। यह परिस्थिति है।

यहाँ तो यह प्रश्न बहुत अच्छा है, '**तो फिर हम शास्त्र पढ़े या नहीं?**' यह प्रश्न किया है। तो कहते हैं कि, '**आत्मलक्ष्यसे शास्त्र पढ़ना...**' एक वचन में इतनी गंभीरता है कि भाई! तुझे आत्मलक्ष्य से शास्त्र पढ़ने की आज्ञा है। जब तक तेरी आत्मज्ञान होने की स्थिति नहीं हुई है तब तक तुझे क्या करना चाहिये? कि आत्मलक्ष्य से शास्त्र-अध्ययन करना चाहिये। शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये इतना ही नहीं कहा, स्वाध्याय करो इतना ही नहीं, आत्मलक्ष्य से करना चाहिये। प्रवचनसार का आधार दिया है।

'**प्रवचनसार में कहा है,...**' शास्त्र में भी यह बात है कि, ऐसा। स्वयं तो कहते हैं लेकिन शास्त्र-आधार देते हैं। ऐसा कहना है, शास्त्र का ऐसा कहना है कि '**भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत आनन्द की मूर्ति है—उसका ज्ञान करना, अनुभव करना।**' क्या कहते हैं? कि जिस ज्ञान के लक्ष्य से, स्वलक्ष्य से आत्मा की पहिचान हो और जो आत्मतत्त्व परमात्मतत्त्व स्वरूप से पहिचान में आये, परम तत्त्व है न, अकेला यानी परम और परम यानी अकेला, परम भी उसके शुद्धत्वका वाचक है। परम आत्म अर्थात् परमात्मा।

जब आत्मा का मूल स्वरूप... मूल स्वरूप, मूल स्वरूप लेते हैं न? आत्मा का मूल स्वरूप, मूल स्वरूप कहो या परमात्मा कहो, वह जब उसे लक्ष्य में आने से, पहिचान होने से उसकी अनन्त महिमा उत्पन्न होती है। अनन्त महिमाधारी होने से उसकी अनन्त (महिमा उत्पन्न होती है)। स्वरूप की पहिचान होने पर स्वरूपलक्ष्य से अनन्त महिमा उत्पन्न हो, उस महिमायुक्त परिणाम के वेगवंत परिणाम को पुरुषार्थयुक्त परिणाम कहने में आता है कि जिसके स्वरूप प्रत्ययी वेग को रोकने को जगत में कोई समर्थ नहीं है। कोई अनुकूलतायें उसे रोक सके ऐसा नहीं है और कोई प्रतिकूलतायें भी उसे रोक ऐसा नहीं है। जिसने भगवान को देखा और भगवान को पहिचाना, उस ज्ञान को भगवान से दूर रखने में कोई समर्थ नहीं है।

विशेष विषय उसका यह है, थोड़ी चर्चा चली कि वह प्रत्यक्ष स्वरूप है। परिपूर्ण प्रत्यक्ष स्वरूप है। भगवान आत्मा सहज ज्ञान, सहज प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान को पहिचानना है, आत्मा को पहिचानना है अर्थात् सहज ज्ञान, शुद्ध ज्ञान को पहिचानना है कि जो प्रत्यक्ष स्वरूप है। जो स्वयं प्रत्यक्ष है, उसमें उसका परोक्ष रहना कैसे बने? स्वयं ही प्रत्यक्षस्वरूप है तो स्वयं ही अपने से परोक्ष रहे ऐसा कैसे बन सकता है? किसी तरह बन सके ऐसा नहीं है। अतः प्रत्यक्ष ही हूँ, ऐसे परिणमन में, ऐसे निज स्वरूपमय परिणमन में परोक्षता का अभाव हो जाता है। परोक्षता परिणमन में टिक नहीं सकती।

ऐसे, '**आत्मलक्ष्यसे...**' ऐसा कहते हैं। स्वरूपलक्ष्य से '**शास्त्र पढ़ना...**' इसमें एक और प्रश्न है, आप न करो तो भी। मुमुक्षुजीव ऐसा कहे कि भाई! बहुत समय से यह शास्त्र पढ़ते हैं और वह शास्त्र पढ़ने में हमारा और कोई प्रयोजन नहीं है। हमें तो आत्मा ही चाहिये। आत्मज्ञान करने के लिये हम शास्त्र पढ़ते हैं और हमारी अत्यंत इच्छा है, फिर भी जो यथार्थ प्रकार से शास्त्र पढ़ना हो... स्वरूपलक्ष्य तो करना है, परन्तु होता नहीं है उसका क्या करना? आत्मलक्ष्य से पढ़ना है, लेकिन आत्मलक्ष्य से पढ़ना नहीं होता है उसका क्या करना? यह प्रश्न होने योग्य है। कहते हैं कि भाई! आत्मलक्ष्य से नहीं होता है तो परलक्ष्य से होता है, यह बात तो नक्की है न? दो के सिवाय तीसरा कोई लक्ष्य नहीं है। एक आत्मा, या तो स्वलक्ष्य से या तो परलक्ष्य से, तीसरा तो कुछ है नहीं, स्व और पर के सिवाय जगत में। तो परलक्ष्य से होता है उसका तुने कुछ अवलोकन किया है?

अनुभव का मार्ग अवलोकन से शुरू होता है। विचार, विकल्प मात्र से नहीं। भले अवलोकन के काल में विचार है, परन्तु सिर्फ विचार हो और अवलोकन न हो, तो वह विचारमात्र धारणाज्ञान का, कोरी धारणाज्ञान का, शुष्कज्ञान का, एक अयथार्थ प्रकार के ज्ञान का एक प्रयत्न होगा। शास्त्रज्ञान का प्रयत्न वह मात्र शुष्क एवं धारणाज्ञान का प्रयत्न होगा। यदि साथ में अवलोकन हो तो परलक्ष्य से हो रहा है, इतना तो तुझे ख्याल आना चाहिये। और उस परलक्ष्य में तुझे क्या परलक्ष्य है इसका भी ख्याल आना चाहिये। तो नुकसान कोई चलाना नहीं चाहता, कोई नुकसान चलाना नहीं चाहता। नुकसान चालू रहे ऐसा कोई इच्छता है? भाई! मोमबत्ती व्यर्थ ही जल रही हो तो बुझानी चाहिये न? वह व्यर्थ ही जल रही है अर्थात् नुकसान हो रहा है।

जिस घी के डिब्बे में घी भरा हो, एक छिद्र हो और घी गिरता हो, तो देखता रहता है? घी गिरता हो उसे कोई देखता रहता है? घी गिर रहा है, महँगे भाव का घी है। पानी गिरता हो तो भी नहीं चलाता, घी गिरता हो तो कैसे चलाये? पानी का मटका फूट गया हो और पानी गिर रहा हो, भले धीरे-धीरे गिरता हो, धीरे-धीरे थोड़ा पानी जाये उसमें क्या दिक्कत है? पानी की क्या क़िमत है? नुकसान किसी को चलाना नहीं है। ख्याल

में आना चाहिये कि यह नुकसान है, बस।

ज्ञान एक ऐसी चीज है, कि यदि वह यथार्थपने प्रवर्तता है तो वह नुकसान को बंद करता है और लाभ को शुरू करता है और उसका नाम ज्ञान है। ऐसा न हो तब तक वह ज्ञान नहीं है, अपितु ज्ञान की ही अज्ञानपर्याय है। पर्यायांतर परिणमित ज्ञान, ज्ञान की ही अज्ञानपर्याय है। इसलिये ऐसा कहते हैं...

वहाँ तो बहुत अच्छा है, शास्त्र में तो, उपयोग लक्षणं द्रव्यं. जीवद्रव्य है वह उपयोग लक्षण है, ऐसा उसको ज्ञान से तो बताया है। अब स्वयं अवलोकन तो करे कि इसमें ज्ञान माने क्या? ज्ञान ज्ञान का अवलोकन करे तो उसमें अकेला ज्ञान क्या? और परपदार्थ का प्रतिबिंब पड़ने पर अध्यास होना, अध्यास अर्थात् पर में मेरे में आता है, राग मेरे में आता है, खट्टा, खारा, तीखा, शीत, उष्ण मेरे में आते हैं, ऐसा जो ज्ञान में अन्य पदार्थ नहीं होने पर भी उसकी हयाती का स्वीकार करना उसको अशुद्ध ज्ञान कहने में आता है। उसने ज्ञान की अशुद्धता वहाँ खड़ी की। यद्यपि ज्ञान अशुद्ध हो नहीं सकता, करना हो तो भी हो नहीं सकता, लेकिन अध्यास होने की संभावना है। उसे ही अशुद्ध ज्ञान कहने में आता है अथवा भ्रांति कहने में आती है। इस प्रकार स्वरूपलक्ष्य से शास्त्र पढ़ना, '**ऐसा प्रवचनसार में कहा है,...**'।

लगनी बदलती नहीं। पूज्य बहिनश्री कहती है उस अनुसार इस विषय को टु द पोईन्ट विचारे तो जीव की लगनी नहीं बदलती है। यदि उसे अपने स्वरूपप्राप्ति की लगनी हो तो उसे शास्त्र में जो आत्मा कहना चाहते हैं अथवा ज्ञानी के वचन में जो आत्मा कहना चाहते हैं ज्ञानी, उनके वचन परसे उसका वाच्य ग्रहण हुए बिना रहे नहीं। और जब तक लगनी न हो तब तक पुकार-पुकारकर कहे तो भी उसका वाच्य उसे ग्रहण नहीं होता। क्योंकि वाच्य स्वयं है। जो कोई वचनपुद्गल है भले ही ज्ञानी के हो, उस पुद्गल में आत्मा नहीं है, उस वचनपुद्गल में आत्मा नहीं है, परन्तु उसका वाच्य अपना निज स्वरूप है। और उस निज स्वरूप पर लक्ष्य जाना, उसका ज्ञान होना, उसका अनुभव होना ऐसा वे कहना चाहते हैं। इसलिये उसको निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से जोडा है। इतनी बात है। लेकिन कब? कि स्वयं लक्ष्य करे तब। अन्यथा निमित्ततत्व लागू नहीं पड़ता। उलझन हो कि क्यों होता नहीं? क्यों होता नहीं? लेकिन मूल से उलझन हो तो रास्ता निकलता ही है।

अंतर की गहराई से रुचि और लगन लगनी चाहिये यह विधि बाकी रह जाती है। छः महिने की बात आती है न शास्त्र में? समयसार में आता है। छः महिने तेरे लिये बस है। कौन-से छः महिने? कि जब इस जीव को वास्तविक लगन लगे तब छः महिने। नहीं तो एक भी छः महिने उसके लिये नहीं है।

बहिनश्री ने यह स्पष्ट किया है कि तुझे तेरी लगन ही अन्दर मार्ग कर देगी। तुझे अन्दर में मार्ग सूझता नहीं है न? क्या करना? सूझता नहीं है तो उसका तुझे कुछ दुःख तो लगना चाहिये न? अथवा वर्तमान दुःख की स्थिति में है इसलिये सुख खोजता है न? तो वह दुःख तुझे कितना लगता है? यदि तुझे, वह दुःख सहन हो सके ऐसा लगता है, फिर तो तू यूँ ही सहन कर सकेगा। परन्तु यदि तुझे वह सहन नहीं होगा, असह्य लगेगा उस दिन तू उसमें-से निकलने का प्रयत्न किये बिना नहीं रहेगा। वह अन्दर से मार्ग कर देती है ऐसा कहते हैं। इसलिये उसे आत्मलक्ष्य से कहा है। ऐसी जो स्वरूपलगन, आत्मप्राप्ति की जो लगन है उसे ही आत्मा का लक्ष्य कहा है। ऐसे लक्ष्य से यदि वह शास्त्र पढ़े तो उसमें जो शुद्धात्मा दर्शाते हैं वह वाच्य उसे समझ में आये बिना रहे नहीं, समझ में आये बिना रहे नहीं।

(प्रवचनका शेष अंश अगले अंक में...)

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी.५ C

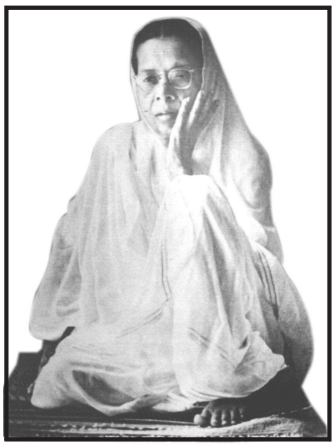

मुमुक्षु :- माताजी! एक और प्रश्न है। दो दिन पहले थोड़ी चर्चा हुई थी लेकिन पूर्ण समाधान नहीं हुआ था। सविकल्प निर्णय का यथार्थ स्वरूप क्या है? उसका सम्यग्दर्शन में कारणपना कितना है? उसकी मर्यादा कितनी?

समाधान :- सविकल्प में?

मुमुक्षु :- सविकल्प यथार्थ निर्णय का स्वरूप क्या है? और उसका सम्यग्दर्शन प्राप्त होने में उसका कारणपना कितना? और वह महिमा करने योग्य हो तो किसप्रकारसे?

समाधान :- सविकल्प में सम्यग्दर्शन का कारणपना कितना? और महिमा किसकी? सविकल्प निर्णय की? किसकी?

मुमुक्षु :- जी हाँ।

समाधान :- उसका कारणपना इतना कि यदि यथार्थ कारण हो तो उसमें निर्विकल्प दशा प्रगट होने का कारण होता है। वह महिमा। बाकी अभी उसके वेदन में या उसकी धारा में अभी कोई फेरफार नहीं हुआ है। बाकी उसका निर्णय यदि यथार्थ हो तो उसे सविकल्पमें-से निर्विकल्प दशा और भेदज्ञान की धारा प्रगट होने का कारण बनता है। यदि यथार्थ कारण हो तो। विकल्पसे किया हुआ निर्णय, लेकिन स्वभाव को पहचानकर कि यह मेरा स्वभाव है, यह विभाव है। स्वभाव को खुद मूल वस्तुमेंसे पहचाने कि यह जो ज्ञायक है, एक गुण को ग्रहण नहीं करके, गुणी को ग्रहण करे और उसप्रकार यथार्थ निर्णय करे कि यह वस्तु-अस्तित्व है वही मैं हूँ, इसके सिवा अन्य जो विभाव पर्यायें होती हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं है। जो अंतरमेंसे शुद्ध पर्याय प्रगट हो वह शुद्ध पर्याय द्रव्य-गुण की जाति की पर्याय हो। यह विभावपर्याय मेरा स्वरूप नहीं है। यथार्थ निर्णय द्रव्य-गुण-पर्याय का बराबर करे तो वह निर्विकल्प दशा होने का कारण होता है। लेकिन उसमेंसे उसे भेदज्ञान की धारा प्रगट हो तो निर्विकल्प दशा प्रगट होती है।

मुमुक्षु :- मोक्षमार्ग प्रकाशक में तत्त्व का निर्णय करना उतना ही तेरा पुरुषार्थ है। तत्त्व का निर्णय यानी यथार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय के स्वरूप पूर्वक मैं ज्ञायक ही हूँ, ऐसा सविकल्पात्मक निर्णय। वहाँ इतना वज़न दिया कि तुझे तत्त्व का निर्णय, तुझे तो बुद्धिपूर्वक यदि कुछ करना है तो तत्त्व का यथार्थ निर्णय करना है वह है। कल गुरुदेव के प्रवचन में भी यह बात आयी कि एकने अनुभव करके आत्मा को जाना है और एकने आत्मा का अनुभव यानी वेदन नहीं हुआ है, लेकिन फिर भी शास्त्र द्वारा समझकर आत्मा का निर्णय किया है, तो उसकी क़ीमत भी कोई कम नहीं है। तो वहाँ क्या विशेष कहना चाहते हैं? यह मुझे आपको पूछना था।

समाधान :- वह उसका कारण बनता है इसलिये क़ीमत कम नहीं है। कारण में उसकी क़ीमत कोई कम नहीं है। कारण में यदि कार्य अवश्य आये, ऐसा कारण हो तो उसकी क़ीमत कोई कम नहीं है। कारण कोई अलग प्रगट हुआ है, वह कोई अपूर्व कारण प्रगट हुआ है कि जिसके पीछे अवश्य कार्य आनेवाला है। इसलिये उसकी क़ीमत कम नहीं है। क्योंकि वह कारण प्रगट हुए बिना कार्य आता नहीं। कारण किसीको प्रगट नहीं हो, कारण लंबे समय तक चले और कार्य होने में देर लगे तो भी वह कारण ऐसा कोई अपूर्व प्रगट हुआ है कि जिसके पीछे कार्य हुए बिना रहता नहीं। इसलिये उसे कारण का आरोप देकर वह कारण भी कोई अपूर्व कारण है। कार्य में कारण का आरोप तो बराबर है, लेकिन वह कारण ही अपूर्व है कि जिस कारण के पीछे कार्य आनेवाला ही है। वह तत्त्व का निर्णय ही ऐसा है कि उस तत्त्व के निर्णय में आगे पुरुषार्थ करनेवाला है और भेदज्ञान और द्रव्य पर दृष्टि यथार्थरूपसे करके आगे जानेवाला है। इसलिये उसकी क़ीमत भी कुछ कम नहीं है। क्योंकि मुक्ति के मार्गपर उसकी परिणमन धारा प्रगट होगी ही।

मुमुक्षु :- उसने यथार्थ का सेवन किया है। दूसरे कोई कारण-भक्ति करे, कुछ दूसरा करे उससे भी जो इस निर्णय तक आया है, उसे कार्य-सम्यग्दर्शन रूपी कार्य प्रगट होने का यथार्थ कारण उसने बोया है।

समाधान :- हाँ, यथार्थ कारण बोया है। भक्ति है वह सीधा कारण नहीं होता। सीधा कारण तत्त्व निर्णय वह मुख्य कारण बनता है। भक्ति बीच में आये बिना रहती नहीं। उसे महिमा आये। जैसे आत्मा की महिमा आनी चाहिए और जिन्होंने ऐसी दशा प्रगट की ऐसे गुरु की, देव की उनकी महिमा आनी चाहिये। यदि अन्दर महिमा नहीं हो, बाह्य में जिसने ऐसे आत्मा का स्वरूप प्राप्त किया उनकी महिमा नहीं हो तो उसे वास्तव में आत्मा की भी महिमा नहीं है। आत्मा की महिमा जिसे आये उसे गुरु की महिमा आये और गुरु की महिमा यदि यथार्थ आये तो आत्मा की महिमा आये बिना रहती नहीं। अन्दर महिमा आये बिना वह आगे नहीं बढ़ नहीं सकता। लेकिन मात्र महिमा हो और कुछ समझे नहीं तो भी आगे बढ़ नहीं सकता। इसलिये तत्त्व निर्णय करे तो वह आगे जाता है। इसलिये तत्त्व निर्णय उसका मुख्य कारण बनता है। तत्त्व निर्णय रुखा करे और समझने के लिये समझ ले तो वह सत्य कारण नहीं है। उसे अन्दर रुखा निर्णय नहीं होता। वस्तु की महिमा होती है कि ओहो..! आत्मा ऐसा पदार्थ है! ऐसा आश्चर्यकारी तत्त्व मुझे कैसे प्रगट हो? ऐसा आत्मा का आश्चर्य और अनुपम स्वरूप की महिमा आये, उसे गुरु की महिमा आये बिना रहती नहीं। इसप्रकार उसे सम्बन्ध है। बाकी तत्त्व निर्णय उसे मुख्य कारण बनता है। उसके साथ, तत्त्व निर्णय के साथ उसे अमुक प्रकार का वैराग्य भी होता है। उसे यह राग और विभावसे विरक्ति हो जाती है। यह कुछ नहीं चाहिये, उसमें कहीं भी रस नहीं है। एक आत्मा ही सर्वस्व है, आत्मा ही सारभूत है। उसे अन्दरसे निरसता आ जाती है। अंतर में वह भी होता है। महिमा होती है, वैराग्य होता है और

(तत्त्वचर्चा का शेष अंश पृष्ठ सं.१९ पर)

पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचन्द्रजी सोगानी सम्बन्धित धर्मात्माओं के हृदयोद्‌गार

'चक्रवर्ती छः खंड को नहीं साधते, अखंड को साधते हैं।' 'सोगानी' में ('द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में) है न?

(श्री निहालचंद्रजी सोगानी ने) यहाँ (सोनगढ़ में) समकित पाया था। हमारे पास आये। अन्य का- योगी-जोगी-सभी का अभ्यास बहुत किया। शास्त्र का अभ्यास करते-करते भी कहीं भी (आत्मा का) पता न लगा, तो यहाँ आये। आये तो (मैंने) इतना कहा : भाई! ये विकल्प, जो दया-दान आदि के उठते हैं उनसे प्रभु तो अंदर भिन्न है। आहाहा! सोगानी। उनका 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश'! ...यह कमरे में, यह रसोईघर में (-समिति के कमरे में) आत्मध्यान में समकित हुआ। (मैंने) इतना कहा कि : 'राग से भिन्न 'प्रभु' अंदर है।' तो पूरी रात - शाम से लेकर सुबह तक ध्यान लगाया। राग से भिन्न, राग से - विकल्प से भिन्न करते-करते सुबह होने से पहले निर्विकल्प सम्यग्दर्शन लेकर उठे! बहुत शक्ति थी... बहुत! आखिर में शांति से देह छोड़कर स्वर्ग में चले गये।

('श्री समयसार' गाथा-३२०, दि. ३०-०७-७९, 'प्रवचन नवनीत'-भाग-१, पता-२३४)

***

जिसे तत्त्व समझने की जिज्ञासा हुई है, वह जीव मार्ग की खोज करेगा, परन्तु जिसको जिज्ञासा नहीं है वह मार्ग खोजनेवाला नहीं है। जिसको वेदन रहता हो उसे मार्ग मिलेगा। परन्तु जो आकुल-व्याकुल होता हो उसको सब पहलू से समझना होगा। 'निहालभाई' ने तो अपनी धुन की बात कही है। उसमें द्रव्यदृष्टि का बल आता है। खुद को कोई अन्य प्रसंग नहीं था इसलिये जो अपना घोलन था वही आया है। उनकी बात चरमसीमा की है। हमें तो सब पूछते हैं कि, कैसे करें? क्या करें? उसका जवाब देते हैं।

(—पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन)

***

'निहालभाई' की कथन शैली में भाषा कड़क है परंतु वस्तुस्थिति तो बराबर कही है। वे कैसे दिखते थे, किसीको खास परिचय नहीं था और बोलते भी कम थे इसलिये दूसरों को बाहर से ख्याल नहीं आवे। उनकी अंतर की परिणति निराली थी। जीव के अंतरंग परिणामों को बाहर से नहीं नापा जा सकता। उन्होंने वस्तुस्थिति सत्य कही है। मार्ग सत्य कहा है जिसे ग्रहण करना चाहिये।

'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' में कहा है न...! 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करुँ?' यह ठीक कहा है। द्रव्य को कहाँ ध्यान करना है? वास्तविक स्थिति वस्तु की यही है, जैसी है वैसी कहते हैं। किसीको भाषा कड़क लगे तो क्या हुआ? अंतरंग परिणति तो निराली ही थी। (—पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन)

***

...शास्त्र के आधार से कोई विद्वान आत्मा की बात करे तो उसमें आत्मरस सम्मिलित नहीं होता। जबकि ज्ञानी भले ही विद्वान न हो, उनमें विद्वता न हो फिर भी चैतन्य की बात करते हो तब उसमें उनका आत्मरस झलकता है। अपनी एक बात चली थी।

'मैं ही मैं हूँ' 'सोगानीजी' की चर्चा चलती थी तब कभीकभार वे, बहुत संक्षेप में बात करनी हो तब ऐसा कहते थे कि, 'मैं ही मैं हूँ।' मैं जो हूँ सो मैं मेरे में ठीक हूँ। वैसे अपनी हस्ती की दृढ़ता की बात, शब्दों से तो बिल्कुल संक्षेप में है, परन्तु भाव में इसका जो रस है, वह रस ऐसा है कि, इसमें वे जो कहना चाहते हैं उसे यदि ठीक तरह से लक्ष्य में लिया जाये तो भीतरमें से उछाला आ जाये कि, क्या कहते हैं ये!! ऐसी भीतर में बहुत मजबूत स्थिति थी! तीव्र पुरुषार्थ से अंदर की स्थिति मजबूत कर ली है!! एकावतारी हैं। यहाँ से देवलोक में गये हैं, (वहाँ से फिर) मनुष्य होंगे और चरमशरीरी मनुष्य होंगे। आखरी भव ! चारित्र अंगीकार करके अल्प काल में परिपूर्ण दशा को प्राप्त करेंगे। ऐसी स्थिति है।

वे कभी-कभी चर्चा में इतनी ही बात करते थे कि, 'मैं ही मैं हूँ।' बस, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन यदि इनके रस को देखो, इनकी जमी हुई दशा को देखो तो इसके आगे विद्वानों के लंबे-लंबे भाषण सारहीन लगे। विद्वानों के लंबे-लंबे भाषण इसके आगे सारहीन जैसे लगे। इतना रसवाला यह वचन है!! ऐसा यदि जीव को रस आये, अपने स्वरूप का रस लगा हो, स्वरूपप्राप्ति का रस लगा हो तो आत्मरसपूर्वक निकले हुए ऐसे वचन सुनते हुए, पढ़ते हुए अंदर में संस्कार पड़ जाते हैं-छाप पड़ जाती है। रस है न! मुहर लग जाती है। ये लगाते हैं न? गवर्मेन्ट की मुहर लगती है न? (यह) अंदर में मुहर लग जाती है। संस्कार जो है वह जैसे सम्यग्दर्शन बहुत बड़ी बात है वैसे आत्मा में संस्कार पड़ना वह भी बहुत बड़ी बात है!

(—पूज्य भाईश्री शशीभाई)

('परमागमसार' बोल-१६०, दि. २४-१-८३ के प्रवचनमें से, ३५:०० मिनट पर)

***

'**यह (भव) तो मुसाफिरी है। अब तो आखिरी मुसाफिरी है।** ' ठीक!

मुमुक्षु :- कितनी दृढ़ता थी!!

पूज्य भाईश्री :- बहुत दृढ़ता थी। बहुत दृढ़ता क्या (कहे अरे!) ऐसे जो एकावतारी पुरुष होते हैं उनका पुरुषार्थ ऐसा होता है कि इस भवमें ही मैं मेरे कामको पूरा कर लूँ। दूसरा भव भी क्यों? इसका यही कारण है कि, जब मेरे स्वरूपमें मेरी एकाग्रता होती है, हो सकती है और ये स्ववश परिणाम है - परवश परिणाम नहीं है, स्वाधीन परिणमन है, तो मैं क्यों पूर्णरूपसे स्थिर नहीं रह पाऊँ? (इसलिये) उनका प्रयास तो पूर्ण होनेका ही रहता है। पूर्णताकी भावना तो शुरूआतसे है, और पुरुषार्थ भी ऐसा चलता है। फिर भी वस्तुव्यवस्था तो मिटती नहीं है या बदलती नहीं है तो (पुरुषार्थमें) कुछ कमी रह जाती है तो एक भव बीचमें देवलोकका हो जाता है। उतनी बात है। लेकिन इतना पुरुषार्थ जोरसे चलता है कि, वे पूरा करनेकी तैयारीमें आते हैं। फिर भी एक भव रह जाता है तो इसकी कोई गिनती नहीं करनी चाहिये।

मुमुक्षु :- गुरुदेवश्रीने एकभवतारीपना मान्य किया लेकिन उन्होंने खुदने भी इस वचनामृतमें अपनी घोषणा की है।

पूज्य भाईश्री :- हाँ! ठीक है। सही बात है। (—पूज्य भाईश्री शशीभाई)

(गुरु गिरा गौरव, पृष्ठ-८९)

***

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से दृष्टि का परिणमन और द्रष्टि का विषय सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

साधक-बाधक - ये सब तो पर्याय का ज्ञान करने के लिए हैं। सबलाईका (अनंत वीर्य के पिण्डरूप का) चश्मा लगाए बिना, नबलाई का भी (यथार्थ) ज्ञान नहीं होता है। साधकपना - बाधकपना तो पर्याय की बात है, 'हमें' तो साधकपने-बाधकपने की भी दरकार नहीं है, क्योंकि बाधकपना 'मुझे' (त्रिकाली को) नुकसान नहीं पहुँचा सकता और साधकपना लाभ नहीं कर सकता; तो फिर इनका विचार क्यों ? २०७.

***

पर्याय मात्र की गौणता करो। अनुभव हुआ, नहीं हुआ - यह मत देखो। 'त्रिकाली वस्तु ही मैं हूँ।' पर्याय मात्र को गौण कर, इधर का (अंतर-स्वरूप का) प्रयास करो। अभिप्राय में एक दफ़ा तो सब से छूट जाना है। २२८.

***

ध्रुव तत्त्वपर पाँव (दृष्टि) रखो.... तो पर्याय में सब कार्य सहज ही होगा। २३०.

***

यहाँ (त्रिकाली में) अपनापन आते ही मोक्ष अपने आप हो जाता है। दृष्टि 'यहाँ' अभेद हुई तो इसे मुक्ति समझो! २३७.

***

(विकल्पात्मक) कृत्रिम पुरुषार्थ की तो बात ही क्या ? लेकिन अक्रिय (चिद्बिंब की) दृष्टि में तो सहज पुरुषार्थ की भी गौणता है, क्योंकि वह भी क्रिया (एक समय की पर्याय) है। अक्रिय (स्वरूप) - दृष्टि में क्रिया मात्र की गौणता है। २४०.

***

वस्तु और वस्तु में एकाग्रता-तणाव (खिँचाव) - बस, ये ही दो बातें हैं। एकाग्रता होते-होते मुक्ति हो जाती है। (इसके अलावा) सुनना, तत्त्वचर्चा करना, ये सब विषय-सेवन हैं (क्योंकि बहिर्मुखीभाव हैं); अपने विषय को छोड़कर, इन्हें विषय बनाते हैं तो अपना विषय पड़ा रह जाता है। २४७.

***

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (मई-२०२०) का शुल्क श्रीमती मीताबहेन शैलेषभाई देसाई मुमुक्षु परिवार, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

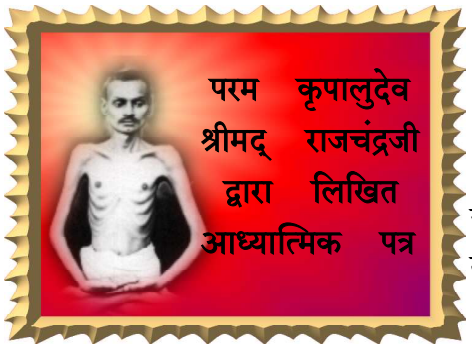

२१६

ॐ

'सत्'

यह जो कुछ देखते हैं, जो कुछ देखा जो सकता है; जो कुछ सुनते हैं, जो कुछ सुना जा सकता है, वह सब एक सत् ही है।

जो कुछ है वह सत् ही है, अन्य नहीं।

वह सत् एक ही प्रकारका होने योग्य है।

वही सत् जगतरुपसे अनेक प्रकारका हुआ है, परन्तु इससे वह कहीं स्वरुपसे च्युत नहीं हुआ है। स्वरुपमें ही वह एकाकी होनेपर भी अनेकाकी हो सकनेमें समर्थ है। एक सुवर्ण, कुंडल, कड़ा, साँकला, बाजूबन्द आदि अनेक प्रकारसे हो, इससे उसका कुछ सुवर्णत्व घट नहीं जाता। पर्यायांतर भासता है। और वह उसकी सत्ता है। इसी प्रकार यह समस्त विश्व उस 'सत्'का पर्यायांतर भासता है, परन्तु 'सत्' रुप ही है।

***

(पूज्य बहनश्री की तत्त्वचर्चा...)

तत्त्व निर्णय होता है। सब साथ में हो तो आगे बढ़ता है। उसमें तत्त्व निर्णय मुख्य है लेकिन सब प्रकारसे तत्त्व निर्णय महिमायुक्त, विरक्तियुक्त और भक्तिपूर्वक का होता है। इसप्रकार का होता है।

मुमुक्षु :- मुख्य भले तत्त्व निर्णय रहा, लेकिन उसके साथ यह सब होता है।

समाधान :- यह सब होता है, नहीं तो निर्णय रुखा हो जाता है। तो वह सच्चा कारण नहीं बनता।

मुमुक्षु :- बहुत सुन्दर जवाब दिया, माताजी! कार्य का कारण कहकर उसकी जितनी महत्ता है उतनी महत्ता भी आपने समझाई और उसके साथ भक्ति, वैराग्य आदि भी साथ में होता है, तब जाकर इस निर्णय में रुखापन नहीं आता, नहीं तो रुखापन आ जायेग।

समाधान :- रुखापन आ जायेगा। भक्ति में भले बाह्य कार्य दिखाई नहीं दे, कुछ बोले नहीं, कोई कार्य में जुड़े ही ऐसा भी नियम नहीं है, लेकिन उसका निषेध अन्दरसे नहीं आता। कितना जुड़े वह उसकी खुद की भावना पर है। बाकी उसका निषेध नहीं आता। सबकुछ उसके साथ होता ही है।

मुमुक्षु :- मुख्य बात-उसे निषेध नहीं होता।

समाधान :- निषेध नहीं होता।

***